International Journal of Research in Social Sciences
Vol.9 Issue 12, December 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

भारत के नव निर्माण एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रतिभाशाली प्रतिनिधी एवं प्रवक्ताओं का सती प्रथा निर्मूलन में योगदान

डॉ. सौ. ज्योती वसंत खडसे
सहयोगी प्राध्यापक
इतिहास विभाग प्रमुख
धनवटे नॅशनल कॉलेज, नागपूर

प्रस्तावना -

प्राचीन भारतीय समाज और परिवार मे नारी का आदरपूर्ण स्थान था। ऋग्वेद काल में ऐसे अनेक साक्ष मिलते है, जिनसे पता चलता है कि बौध्दिक आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन में नारी को पुरूषों के समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पत्नी के रूप में वह परिवार की स्वामिनी होती थी। शतपथ ब्राम्हण के अनुसार मनुष्य स्वयं पूर्ण नही है, विवाह के बाद पत्नी उसे पूर्ण बनाती है पितृसत्तात्मक परिवार प्रणाली के उपरान्त भी समाज में नारी को सन्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। लेकिन उत्तर वैदिक काल में नारी की स्थिती में थोडी गिरावट आ गई। कन्या का जन्म कष्ट का कारण माना जाने लगा। स्त्रियों के संस्कारों के समय वेद मन्त्रों का उच्चारण बंद कर दिया था। स्त्री-पुरूष की समानता का भाव भी कम था। इतनाही नही स्त्री की स्वतंत्रता कम हो गई। अनेक बंधनो, कुरितियों मे उसे जकडा गया जैसे बालविवाह, पर्दा प्रथा, शिक्षा ग्रहण करने के अधिकार से उसे वंचित किया गया। परिवार में विधवा नारी की दशा अत्यंत ही हीन हो गयी थी। साथ में अत्यंत बिभत्स्य सती प्रथा जैसी प्रथा का पालन स्त्रियों को करना पडता था।

सती प्रथा अत्यन्त अमानवीय कृत्य था। पति के दिवंगत हो जाने पर पत्नी को जीते जी पति के शव के साथ जलकर मर जाना स्त्री और उसके परिवार का गौरव समझा जाता था। प्राचीन काल से शुरू हुई यह प्रथा को 19 वी शताब्दी तक चलती रही। समय समय पर कुद बुध्दजीवियों ने इसका विरोध किया था, परंतू स्त्रियों का सती होना बंद नही हुआ। 19 वी शताब्दी में भारत में कुछ बुध्दिजीवि सामने आये और उन्होने सती प्रथा जैसी घृणित कुरिति के विरूध्द आवाज उइाई और उनके प्रयासों के कारण भारत में तत्कालिन ब्रिटिश सरकार को सती प्रथा दंडनिय अपराध घोषित करना पडा। प्रस्तुत शोध कार्य में सती प्रथा के निर्मलन मे भारत के प्रतिभाशाली प्रतिनिधी एवं प्रवक्ताओं के योगदान पर चर्चा किया गया है।

सती प्रथा निर्मूलन में भारत के प्रवक्ताओं का योगदान -

भारत के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है की, विभिन्न युगों में स्त्रियाँ सती होती गई। महाभारत और रामायण से ज्ञात होता है, राजवंशो की स्त्रियाँ सती हो जाती थी, पाण्डु की पत्नी माद्री सती हो गई थी। हर्ष के काल में (608-647) सती-प्रथा के बार में आधार मिलते है। हर्ष की अपनी माँ सती हो गयी थी।

ईसा की सातवी सदी तक सती-प्रथा के लिए प्रारम्भिक युग था जिसमें स्त्रियाँ समय≤ पर सती हो जाती थी। किन्तु उस युग के स्मृतीकार इतने उदार अवश्य थे कि इस भयावह प्रथा को प्रश्रय नही दिया। यहा एक बात याद रखनेवाली है कि मनु ने सती का कही भी हवाला नही दिया। तत्कालिन स्मृतिकारों के अनुसार विधवा के लिए तपस्विनी का जीवन ही आदर्श माना गया है। इसके बाद ही सती का स्थान आता है। बृहस्पति, पराशर और अग्निपुरान के लेखक का यही मत है। नारद और पराशर ने अपनी स्मृतीयों में विधवा विवाह को उचित बताया है। मेघातिथी ने सती-प्रथा का घोर विरोध किया है। उनके मत से सती-प्रथा के पिछे वैदिक समर्थन नही है। बल्कि वैदिक नियमों के विरूध्द है। विराट ने (मुन-टिका 5-137 स्पष्ट शब्दों में सती प्रथा का विरोध किया है। उनका कहना था, विधवा जीवित रहकर अपने पति की सेवा कर सकती है। वह पति की मृत्यु के बाद तर्पण कर सकती है। बाणभट्ट ने सती-प्रथा की विस्तृत आलोचना की है, उनके अनुसार सती-प्रथा से किसी प्रकार का लाभ नही है, इससे पति स्वर्ग नही जाता और स्त्री तो नरक में जाती है। तत्कालिन तंत्र लेखकों ने भी इस प्रथा का विरोध किया है। उनका कहना था कि स्त्री शक्तिस्वरूप है, अतः उसे अपने पति के साथ जलाने वाले लोग सर्वदा के लिए नरक में रहेगे इन उदाहरणो से ज्ञात होता है की, प्राचीन काल में भी ऐसे प्रतिभाशाली लोग थे जिन्होने सती-प्रथा जैसी कुरिति के विरोध में आवाज उठाई थी।[1]

ब्राम्हणों के विरोध करने पर भी राजपूतों में सती-प्रथा कम होने के बजाए बढती गयी। उस समय तक ब्राम्हण वर्ण में सती-प्रथा का प्रचार नही हुआ था। वे लोग प्राणोत्सर्ग की अपेक्षा त्याग और तपस्या को अधिक महत्व देते थे। किन्तु 1000 ई. के बाद परिस्थिती बदल गई। ब्राम्हण वर्ण में भी धीरे-धीरे सती प्रथा का प्रचार होने लगा था। तत्कालीन भाष्यकार भी अपने टीकाओं में सती-प्रथा के पक्ष में नियम बनाने लगे थे। ब्राम्हण स्त्रियों के विषय में कहा जाने लगा कि वे केवल शारीरिक दुःखों का अन्त नही चाहती है। बल्कि मुक्ति प्राप्ति हेतु अपने पति के पार्थिव अवशेषों के साथ जलती है। अर्थात सती-प्रथा से ब्राम्हण भी नही बच सके अपितु सती-प्रथा को भव्य रूप प्रदान किया गया।[2]

मध्ययुगीन मुस्लिम शासन में सती-प्रथा प्रचलित रही। अपितु कश्मिर के शासक सिकन्दर ने 15 वी शताब्दी में इस प्रथा को बन्द करने का आदेश दिया था। मुगल शासकों मे अकबर तथा जहाँगीर ने इसे समाप्त करने के कदम उठाये थे। पुर्तगाली गवर्नर अलबुकर्क ने अपनी अमलदारी में सती-प्रथा को बन्द करने के कडे आदेश दिये थे। पेशवा बाजीराव द्वितीय के प्रशासन काल में इसे निरूत्साहित किया गया था। फिर भी कतिपय कारणों से बंगाल और राजस्थान में सती-प्रथा बहुत अधिक प्रचलित हो गयी थी। 18 वी शताब्दी के उत्तराध्द और 19 वी शताब्दी के पूर्वाध्द में बंगाल के प्रतिवर्ष सेकडों स्त्रियाँ सती हो जाया करती थी। राजपतों मे कुलीय रक्त की शुध्दता और प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के लिए उनमें इस प्रथा का प्रचलन सर्वाधिक था।[3]

इस प्रकार प्राचीन और मध्ययुगीन काल में लोगों ने सती-प्रथा का विरोध करने का प्रयास किया। अपितु इतना प्रयास सती-प्रथा जैसी घृणित कुरिति को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नही हुआ। 19 वी शताब्दी के मध्य तक भारतीय नारियों की स्थिति अत्यन्त खराब थी। अनेकों कुरितियों के कारण स्त्रियों का सम्पूर्ण जीवन दुखमय था। 19 वी शताब्दी में भारतीय समाज में व्याप्त कुरितियों पर ईसाई मिशनरियों ने प्रहार किया। इन मिशनरियों को कार्य करने में जिन प्रतिभाशाली प्रतिनिधी एवं प्रवक्ताओं ने सहयोग दिया, उनमे प्रमुख है राजा राम मोहन रॉय, एन. जी. चन्द्रावरकर, के. टी. तेलंग, एम. जी. रानडे, केशवचन्द्र सेन, जोतीराव फुले, बहरामजी मलकारी आदि।

19 वी शताब्दी में राजा राम मोहन रॉय सती-प्रथा के घोर विरोधी थे। 1811 ई. में अपनी आँखों के सामने अपनी भाभी के अग्नी प्रवेश से दुःखी हुये थे।

उन्होने अपनी मासिक पत्रिका 'संवाद कौमुदी' द्वारा भी सती-प्रथा के विरूध्द प्रचार किया। उस वक्त परम्परागत रूढीवादी वर्ग सती-प्रथा के समर्थन में कुछ तर्क दिये, राजा राममोहन रॉय ने उन सभी तर्को का खंडन किया। उनके अनुसार मनुस्मृति में कहीं भी सती-प्रथा का समर्थन नही किया गया है, बल्कि विधवाओं के लिए संयमी, त्यागी जीवन व्यतित करने पर बल दिया है। दुसरे तर्क का भी उन्होने उत्तर दिया, धर्मशास्त्रों के अनुसार फल प्राप्ती के लिए कोई कार्य करना नही चाहिए। स्त्रियाँ जो सती होती है उनके साथ बल का प्रयोग किया जाता है। चैथा तर्क कि सती-प्रथा अन्त होने पर स्त्रियाँ गलत रास्ते पे जायेगी, सर्वथा गलत है। पाचवा तर्क उन्होने दिया स्त्रियों को बुध्दि का उपयोग करने का अवसर ही नही दिया गया, तो हम कैसे मान ले की उनमें विवेक का अभाव है, इस प्रकार विरोध के बावजुद राजा राममोहन रूढिवादियों का विरोध करते रहे।[4]

राजा राममोहन रॉय ने 30 नवम्बर 1818 मे । बवदमितमदबम इमजूममद An advocate and an opponent of the practic of burning widows alive इस नाम से किताब का प्रकाशित किया जिसमें स्त्रियों को इस प्रकार जिंदा जलाया जाना सर्वथा मानवतावादी विचारों के विपरित है यह स्पष्ट किया।[5]

इसके साथ साथ राजा राममोहन रॉय ने तत्कालिन गर्वनर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंग को खत लिखकर सती-प्रथा के बारे में हिंदू शास्त्र में कोई आधारभूत प्रमाण नही मिलता इससे अवगत कराया था। उनके प्रयासो के कारण 4 दिसम्बर 1829 में सती-प्रथा निर्मूलन का कानून शासन द्वारा पास किया गया था। ई. 1830 में मुंबई और मद्रास प्रांत में यह कानून लागू किया गया था।[6]

राजा राममोहन रॉय के बाद भारत में हिन्दू समाज के बहुत बडे उद्धारक के रूप में हम स्वामी दयानंद सरस्वती जी का नाम ले सकते है। उन्होने सत्यार्थ प्रकाश नामक ग्रन्थ में अपना देश और अपने राज्य का नारा देकर सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करने का प्रयास किया। उन्होने स्त्रियों और पुरूषों का समानता पर बल दिया तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होने आर्य समाज की स्थापना कर उसके माध्यम से बालविवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, सती-प्रथा आदि सभी हिन्दू सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया।[7]

समाज सुधारक की दृष्टि से ईश्वरचंद्र विद्यासागर स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के प्रबल समर्थक थे। स्त्री उध्दार के लिए उन्होने सभी सम्भव प्रयत्न किये। 1855 ई. में उन्होने विधवा-पुनर्विवाह के पक्ष में उठायी और सरकार से इसके लिए कानून बनाने की माँग की। अर्थात एक तरह से यह सती-प्रथा का विरोध ही था। उनके प्रयत्न सफल हुए। 1856 ई. में विधवा-पुनर्विवाह कानून बनाया गया। भारत में पहला कानूनी विधवा-विवाह कलकत्ता में 7 दिसम्बर 1856 ई. को ईश्वरचंद्र विद्यासागर की प्रेरणा और देखरेख में सम्पन्न हुआ था।

आंधप्रदेश मे विरेसंलिंगम ने विधवा विवाह के लिए कार्य किया, उनके कार्य का परंपरावादियों ने विरोध किया। परंतु वे अपने विचारों पर डटे रहे। 1881 ई. मे राजमुन्दरी में एक सवर्ण विधवा का विवाह उन्होने कराया, उन्होने अपने जीवन-पर्यन्त स्त्री संबंधी कुरितियों को दूर करने का प्रयास किया। इसी कारण दक्षिण-भारत के महान सुधारकों में उनका नाम अवश्य लिया जाता है।[8]

19 वी शताब्दी में स्त्रियों की स्थिती सुधारने का प्रयास अनेक प्रान्तों में किये गय। महाराष्ट्र भी उसमें अग्रणी रहा उनमें महादेव गोविंद रानडे नाम भी अग्रणीय है। वे नारी दिशा के प्रबल समर्थक थे तथा उनकी पत्नी रमाबाई ने उन्हे इस कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। भारतीय समाज में सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहुपत्नि-विवाह इत्यादी कुरितियों पर व्यक्तिगत स्तर पर चर्चा करने का प्रयास ज्यादातर किया गया था। समाज सुधार के लिए देशव्यापी संगठन नही था। 1887 ई. में

रानडे ने इंडियन नैशनल सोशल कान्फ्रेन्स की स्थापना करके सामाजिक सुधार की गतिविधियों को एक सुत्र में बाँधने का प्रयास किया। डॉ. आत्माराम पांडुरंग ने प्रार्थना समाज की स्थापना की जिसने 'विधवा विवाह संघ' की स्थापना करके महाराष्ट्र में समाज सुधार कार्य किया।[9]

ई. 1835 में बालशास्त्री जांभेकर ने 'दिग्दर्शन' नामक मासिक पत्रिका शुरू की जिससे तत्कालिन समाज सुधारकों को अपने लेखोद्वारा जनजागृती का कार्य करने के लिए साधन उपलब्ध हुआ।[10]

ई. 1837 में 12 में को दर्पण नामक वृत्तपत्र में सती-प्रथा के बारे में लिखा गया था। सातारा के महाराज के न्यायाधिश की जब मृत्यू हुई तब उनकी पत्नि उनका बेटा केवल बारह साल का हाने के बावजूद सती हुई थी। हालाकी सातारा के महाराज ने उन्हे सती होने से रोकने के लिए उस स्त्री के पति को दिया जानेवाला वेतन पत्नि को दिया जाने की केवल बात नही उन्हे अश्वस्त किया था। फिर भी वह स्त्री सती हुई थी। अर्थात सती-प्रथा को रोकने का प्रयास होते गये।[11]

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के क्षेत्र में महाराष्ट्र में महात्मा जोतीराव फुले, गोपाळ हरी देशमुख (लोकहितवादी), गोपाल गणेश आगरकर इत्यादीयों का बहुत बडा योगदान रहा हैं लोकहितवादी ने अपने विचार शतपत्रों के माध्यम से लिखकर सती-प्रथा का विरोध किया। महात्मा जोतीराव फुले ने प्रत्यक्ष कृति करके विधवाओं की समस्याओं का समाधान ढुंढने का प्रयास किया।

महात्मा गांधीजीने सती-प्रथा को अज्ञान और दुर्बलता का प्रतिक माना था। और इसका उन्होने विरोध किया था। गुजरात में समाज सुधारकों की गतिविधियों में बडौदा राज्य के महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने शासक की हैसियत से स्त्रियों की स्थिती सुधारने की दिशा में दृढ कदम उठाये। स्त्रियों के बौध्दिक एवं सांस्करिक विकास के लिए औद्योगिक केन्द्रों तथा नारी केन्द्रों की स्थापना की थी।

इस प्रकार भारत नवनिर्माण एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रतिभाशाली प्रतिनिधी एवं प्रवक्ताओं का सती-प्रथा निर्मूलन में बडा योगदान रहा।[12]

उपसंहार -

उत्तर वैदिक काल से स्त्री और पुरूष की समानता का भाव धिरे धिरे कम होता गया। कन्या जन्म दुःख का विषय समझा जाने लगा। उसके उपरांत के विभिन्न युगों स्त्रियों की सामान्य दशा में अवनति हो गयी थी। धिरे धिरे उनका जीवन अनेक कुरितियों के बंधनों में लिप्त होता गया। उन्हीं में अत्यंत घृणित प्रथा थी। सती-प्रथा जो प्राचीन काल से शुरू होकर 19 वी शताब्दी तक चली आ रही थी। परंतु कालचक्र में बदलाव सामान्य बात है। विभिन्न युगों में अनेक प्रतिभाशाली प्रवक्ताओं ने घृणित सती-प्रथा के विरोध में आवाज उठाई, कार्य किया और परिणाम स्वरूप सती-प्रथा जैसी घृणित प्रथा कानून बनाके अंत किया गया। यह नारी विकास के मार्ग का एक महत्वपूर्ण कदम था।

संदर्भ सूची

1) अ) गजरानी शीव, मध्यकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याएँ, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण, 2013, पृ.सं. 75.

ब) पाण्डे, मिथिला शरण, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाए, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृ.क्र. 129, 130.

2) श्रीवास्तव नीरज, मध्यकालीन भारत प्रशासन समाज एवं संस्कृति, ओरियंट ब्लैक स्वाॅन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 11.

3) शर्मा, व्यास, आधुनिक भारत का राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, भाग-1, पंचशील प्रकाशन, जयुपर, पृ.क्र. 426, 427.

4) अ) मुजुमदार, राजा राम मोहन रॉय प्रोग्रेसिव्ह मुव्हमेंन्ट इन इंडिया, ब्राम्हो मिशन प्रेश 1941, कलकत्ता, पृ.सं. 142.

ब) राय, सती, एडिटर, मुकुल राज आनंद, बी. रा. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, द्वितिय संस्करण, 1996, पृ.सं. 24, 25.

5) केसकर, बी. बी., राजा राममोहन रॉय, मनोरंजन छापरवाना, गिरगाव, मुंबई, 1915, पृ.सं. 54.

6) अ) राय आर. एम., आनंद एम. आर., सती, डि. के. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1989, पृ.सं. 51, 72

ब) सुजीत कुमार, भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ.सं. 314.

7) सेठी, भारता का आधुनिक इतिहास, प्रकाशन केन्द्र, अमिनाबाद, लखनऊ, पृ.सं. 467.

8) शर्मा एल. पी., आधुनिक भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, इक्किसवाँ संशोधित संस्करण 2007, पृ.सं. 418, 419.

9) जोशी, लक्ष्मणशास्त्री, लोकमान्य टिळक लेखसंग्रह, कै. न्या. महादेव गोविंद रानडे (22 जानेवारी 1901) साहित्य अकादमी, नवी दिल्ली, 1969, पृ.सं. 431, 433.

10) लांडगे, आधुनिक महाराष्ट्राचा समाज सुधारणेचा इतिहास, दिलिपराज प्रकाशन प्रा.लि., पुणे, प्रथमावृत्ती, 2014, पृ.क्र. 45.

11) रानडे, स्त्री प्रश्नांची चर्चा एकोनिसावे शतक, पृ.क्र. 204, 209.

12) गागळ, भारतीय इतिहासातील स्त्रिया व स्त्री जीवन, कैलाश पब्लिकेशन्स, औरंगाबाद, सुधारित आवृत्ती, 1917, पृ.सं. 241, 243, 252.